

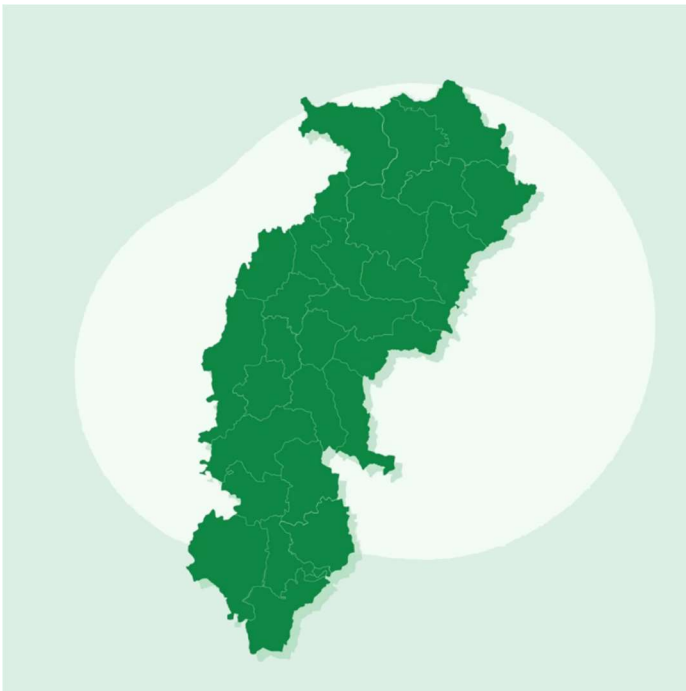


Date:02-05-23

Walking a tightrope in Chhattisgarh

Social justice questions pose a dilemma for the Congress government

Shubhomoy Sikdar



As Chhattisgarh Chief Minister Bhupesh Baghel drives the Congress towards this year's Assembly elections, the rear-view mirror shows months of turmoil over the question of reservation and the challenge of maintaining a social coalition he has built in a State dominated by socio-economically disadvantaged groups.

The fact that the Supreme Court granted interim relief on Monday to the Chhattisgarh government on its plea challenging a State High Court order on reservations of September 2022 has come as a breather for Mr. Baghel. However, it opens up new possibilities of conflict. The apex court stayed the High Court order setting aside 58% reservation (32% for Scheduled Tribes, 14% for Other Backward Classes and 12% for Scheduled Castes or 32-14-12) in government jobs and educational institutions.

In the seven months since the last order, recruitment and admissions have stalled. There has been palpable anger directed at the government, especially among the tribal people — a traditional vote bank for the Congress. Some factions of the Sarva Adivasi Samaj were even planning to field their own candidates in the Assembly elections. They say they will still do so if they have to settle for anything less than what the 32-14-12 formula provides for.

Last time, when the Congress won riding on a strong anti-incumbency wave against the 15-year-old BJP government, it almost swept the tribal seats and made deep inroads into the OBC vote bank of the BJP.

Besides filing a Special Leave Petition in the Supreme Court against the High Court order, the government also passed two Amendment Bills that take the total quota in the State to 76%. It has kept the 32% quota intact for STs, increased the quote for OBCs from 14% to 27% and that of SCs from 12% to 13% as well as introduced a 4% reservation for Economically Weaker Sections (EWS) (32-27-13-4). Both the Bills are, however, awaiting the Governor's assent since last December.

This is where the perception challenge for the Congress begins. Mr. Baghel has made several public appeals to the Governor and even written to the Prime Minister seeking the inclusion of the two Bills in the Ninth Schedule of the Constitution so that they are beyond judicial review. But Congress sources privately acknowledge that it was unlikely that the Governor would sign them before the elections. The Congress has accused the BJP of playing backdoor politics using the Raj Bhavan, but it first has to field questions on why the 58% quota was set aside by the High Court in the first place.

A return to the 32-14-12 formula following the Supreme Court order is also not without challenges. If the tribal people's concerns have been addressed by the stay, it would also mean that SCs do not stand to gain that extra 1% that the 32-27-13-4 formula provides for, making it tough for the government to keep them happy. The perception loss for the OBC communities — down to 13 from 27 — will be even bigger as the amendment Bills have created a frenzy that will be difficult to contain.

There are added complexities associated with OBC politics in the State vis-a-vis reservations. A higher quantum of reservations for OBCs would allow Mr. Baghel to consolidate different constituents of the OBC umbrella, such as the Sahus and the Kurmis. But a return to the 58% formula would rob him of the opportunity to bridge the gap between these two major OBC groups who tend to go in opposite directions every election. Also, since there likely won't be any anti-incumbency wave in the Congress' favour, it may also make local factors more pivotal in the OBC-dominated seats. Experts say such a situation will allow the BJP to be selective in its wooing of the OBC communities. There is also a prevailing view within some sections of the tribal people that because of Mr. Baghel's OBC politics, reservation for them has been affected, and bringing a separate Bill for ST reservation would have settled matters much earlier.

Since the EWS quota doesn't place any restrictions on caste, those outside the caste reservation ambit are also feeling aggrieved with a return to the 32-14-12 formula that leaves nothing for the poorer sections of the general castes. While much fewer in number in the population, the upper castes send a significant number of MLAs to the State Assembly and form a pressure group by themselves.



Date:02-05-23

समलैंगिक शादी का दर्जा लिव-इन संबंधों जैसा हो

विराग गुप्ता, (लेखक और वकील)

सरोगेसी के माध्यम से पिता बनने की चाहत रखने वाले सलमान खान कानूनी अड़चनों में फंसे हैं। तलाक, गर्भपात और गोद लेने की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए प्रयास करने के बजाय समलैंगिक शादियों को कानूनी मान्यता देने के लिए सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई हो रही है। सरकार, बार काउंसिल, न्यायविद, पूर्व जज और धार्मिक संगठनों ने इस सुनवाई का विरोध किया है। जजों ने भी मान लिया कि कानून बनाने का अधिकार संसद को है। 50 साल पुराने केशवानंद भारती

मामले में शक्तियों के विभाजन की संवैधानिक लक्ष्मण रेखा सरकार सहित न्यायपालिका के लिए भी बाध्यकारी हैं। उसके बावजूद हजारों लम्बित मामलों को दरकिनार करके इस मामले में लम्बी अकादमिक बहस के नाम पर सुप्रीम कोर्ट का कीमती वक्त जाया होने से जनता में बेचैनी और निराशा है। याचिकाकर्ताओं की सतरंगी अवधारणाओं से भरपूर बहस के सीधे प्रसारण से कमजोर हो रही अदालतों की गरिमा के पांच पहलुओं को समझने की जरूरत है :

1. कोलकाता हाईकोर्ट जज के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि सुनवाई वाले मामलों में जजों का इंटरव्यू देना गलत है। सुप्रीम कोर्ट के नवतेज सिंह जौहर फैसले से भारत में समलैंगिक संबंधों को अनापराधिक बनाया गया था। ब्रिटिश उच्चायोग में उस फैसले की चौथी वर्षगांठ पिछले साल अगस्त 2022 में मनाई गई। उस कार्यक्रम में जस्टिस चंद्रचूड़ ने कहा था कि समलैंगिकों का लम्बा सफर बाकी है। दस साल पहले जस्टिस सिंघवी की बेंच के फैसले के अनुसार कानून में बदलाव का हक सिर्फ संसद को है। फैसले के खिलाफ क्यूरेटिव याचिका को दरकिनार करके नई पिटीशन पर फैसला देकर 2018 में समलैंगिकता को अनापराधिक बना दिया गया। वर्तमान सुनवाई से पूरे मामले को अगले पड़ाव में ले जाने की कोशिश हो रही है। जजों के व्यक्तिगत आग्रह से कानून में बदलाव को कॉलेजियम सिस्टम से समझने की जरूरत है, जिसे संविधान की मनमाफिक व्याख्या के कई फैसलों से सुप्रीम कोर्ट ने लागू कर दिया।

2. इस बारे में कानूनी बदलाव के लिए एनसीपी सांसद सुप्रिया सुले के निजी बिल को संसद ने कुछ साल पहले मंजूरी नहीं दी थी। क्या उस रिजेक्शन को संसद के निर्णय की अभिव्यक्ति नहीं माना जाना चाहिए? केंद्र ने इस मामले में राज्य सरकारों से राय मांगी है। संघीय व्यवस्था में राज्यों का पक्ष सुने बगैर मामले में एकतरफा सुनवाई करना संविधान के प्रतिकूल है।

3. अंग प्रत्यारोपण, आयकर, उत्तराधिकार, गोद लेने, पेंशन, अनुकम्पा नियुक्ति जैसे कई मामलों में विवाहित लोगों को जो हक हासिल हैं, उनकी आइ में समलैंगिक जोड़े नए कानून की मांग कर रहे हैं। अनुच्छेद-14 की समानता का सिद्धांत दो अलग वर्गों पर लागू नहीं हो सकता। अर्बन इलीट की सरकारी दलील को सीजे ने ठुकरा दिया है। लेकिन समलैंगिकों की 8 से 10 फीसदी आबादी के दावों में भी याचिकाकर्ताओं ने अधिकृत आंकड़े नहीं दिए हैं। पश्चिमी देशों के अनुसरण की बात करें तो ईयू के सख्त डाटा सुरक्षा कानून को लागू करने के लिए सुप्रीम आदेश भी अविलम्ब पारित होना चाहिए।

4. कानून के अनुसार लड़की की शादी की न्यूनतम उम्र 18 और लड़के की 21 साल है। जुवेनाइल जस्टिस एक्ट के तहत सिंगल व्यक्ति किसी लड़की को गोद नहीं ले सकता। कई राज्यों ने थर्ड जेंडर को ओबीसी की मान्यता दी है। अंतर्निहित शक्तियों के इस्तेमाल से सुप्रीम कोर्ट अगर आदेश पारित भी कर दे तो उसे अमली जामा पहनाने के लिए अनेक पर्सनल लॉ और 160 से ज्यादा दूसरे कानूनी प्रावधानों में बदलाव तो संसद से ही होगा।

5. इस सुनवाई के बाद करोड़ों मुकदमों की पेंडेंसी के खात्मे, अदालतों में बेहतर इन्फ्रास्ट्रक्चर, कॉलेजियम में सुधार और अंडरट्रायल्स की रिहाई जैसे मसलों पर भी अनुच्छेद 142 की शक्तियों का क्रांतिकारी इस्तेमाल हो तो पंचपरमेश्वर जजों के साथ संविधान का भी मान बढ़ेगा। सुप्रीम कोर्ट के फैसलों से लिव-इन रिलेशन को रजिस्ट्रेशन के बगैर शादी जैसा दर्जा मिल ही चुका है।

Date:02-05-23

अपनी आबादी का नियंत्रण व नियोजन हमें ही करना है

डॉ. अनिल प्रकाश जोशी, (पद्मश्री से सम्मानित पर्यावरणविद्)

अपने देश की आबादी अब लगभग 142 अरब हो चुकी है। दुनिया भर की भी इस तरफ नजर है कि इस बढ़ती आबादी को भारत कैसे झेलेगा और आने वाले समय में इसकी क्या रणनीति होगी? बढ़ती आबादी के बहुत-से मतलब होते हैं। जहां एक तरफ बेरोजगारी देश को बोझ में डाल रही है, वहीं दूसरी तरफ भोजन, आवास की चिंता के साथ आम लिविंग स्टैंडर्ड भी खतरे में आ जा रहा है। दूसरी बड़ी चुनौतियों में पारिस्थितिकीय परिवर्तन भी है। चाहे वह खेती-बाड़ी की बात हो या पानी की या फिर जंगल-जमीन के मुद्दे हों, इन सबने नई आपदाओं की कतार खड़ी कर दी है।

अगर भोजन को ही देख लें तो क्लाइमेट चेंज के कारण यह मानकर चला जा रहा है कि 30 प्रतिशत भोजन उत्पादन की कटौती सिर्फ इसलिए हो गई, क्योंकि क्लाइमेट ने हमारा साथ नहीं दिया, जो कि पारम्परिक तरीके से हमारी खेती का हिस्सा हुआ करता था। एक आंकड़े के अनुसार अपने देश में करीब 20 करोड़ लोग भूखे सोते हैं। साथ में यह भी सत्य है कि एफएओ के अध्ययन के अनुसार भारत में 40 प्रतिशत भोजन की बर्बादी होती है। अगर बढ़ती आबादी को बर्बाद होते फूड के साथ जोड़ लें तो हम भोजन की चुनौती को निपटा सकते हैं। प्रबंधन कैसे बेहतर हो, यही बड़ा सवाल है। आज भोजन बर्बादी करीब 92 हजार करोड़ रुपए के बराबर हो गई है, इतने में हम आबादी के भोजन-संकट का हल कर सकते हैं।

आंकड़े बताते हैं कि 2050 तक हमको आज की तुलना में 70 प्रतिशत और भोजन की आवश्यकता होगी। मात्र भोजन ही नहीं बल्कि डेयरी प्रोडक्ट या अन्य की खपत में भी बढ़ोतरी होगी। संकट यह है कि पहले ही क्लाइमेट चेंज के कारण ये उत्पादन 30 प्रतिशत नीचे जा चुका है। दूसरे तरफ कुछ मुद्दे हैं, जिनको हम नकार रहे हैं और जिन पर हमने शुरुआती रूप में कभी बहुत ध्यान नहीं दिया। पानी- जो कि पीने से लेकर और खेती-बाड़ी तक के लिए जरूरी है, उस पर भी संकट मंडरा चुका है। एक आंकड़ा सामने आया है कि 1950 में जहां 5000 क्यूबिक मीटर पानी प्रति व्यक्ति उपलब्ध था, वह 2016 में 1500 के करीब चला गया और 2050 में यह 1200 के लगभग होगा।

बढ़ती शहरी आबादी ने भूमिगत जल का बेतहाशा दुरुपयोग इस हद तक कर दिया है कि कई शहर डार्क जोन में जा चुके हैं। वनक्षेत्र भी घट रहा है। ऐसे में इतनी बड़ी आबादी की प्राकृतिक और पारिस्थितिकी आवश्यकताओं को गम्भीरता से लेना पड़ेगा।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि इतनी बड़ी आबादी में हमारे पड़ोस का देश चीन दुनिया के आर्थिक शिखर पर पहुंच चुका है। उसने आबादी को ज्यादा शोर-शराबे का हिस्सा नहीं बनने दिया, बल्कि अपनी जनशक्ति का उसने जिस तरह से उपयोग किया है, वह एक बड़ा उदाहरण हम सबके लिए है। अगर आप चीन की आर्थिकी को गम्भीरता से देखें तो जहां उसने बड़े प्रयोग करके अपने देश की आर्थिकी को मजबूत किया, वहीं दुनिया भर के खुदरा बाजार में भी पकड़ बनाई। चीन ने अपनी आबादी का कौशल-विकास किया और एक्सपोर्ट करके अपना रसूख बनाया। ऐसे में हम इस हो-हल्ले में न पड़ते

हुए कि हम 142 करोड़ हो गए, नए रास्तों और प्रबंधनों की चिंता करे तो बेहतर होगा। अपनी आबादी का नियंत्रण और नियोजन तो हमें ही करना है।

हम ढेर सारे संसाधनों से युक्त हैं। हमारे पास हर तरह की सम्भावनाएं हैं। पर्यटन की दृष्टि से भारत सर्वोपरि साबित हो सकता है। आज यह मानकर चला जा सकता है कि हमने अपने पर्यटन का मात्र 30 प्रतिशत से ज्यादा लाभ नहीं उठाया है। दूसरी बड़ी बात यह है कि इस बड़ी आबादी को हम एक जनशक्ति के रूप में उपयोग में लाए। अपने देश में सूखती हुई नदियों, बंजर पड़ी भूमि या पारिस्थितिकी से संदर्भित तमाम तरह के कार्यों को इस बड़ी जनशक्ति से जोड़ा जा सकता है। इसमें प्रधानमंत्री का लोकल फॉर वोकल नारा काम आ सकता है।

Live
हिन्दुस्तान
.com

Date:02-05-23

सहजता से तलाक

संपादकीय



गंभीर विवाद की स्थिति में तलाक का सुगम होना जरूरी है और इस दिशा में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला बहुत सराहनीय है। न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत अपनी शक्तियों के अनुसार, न सुधरने योग्य आधार पर एक विवाह को भंग कर सकता है और दोनों पक्षों को परिवार न्यायालय में भेजे बिना भी तलाक दे सकता है। फिलहाल, परिवार न्यायालय में आपसी सहमति से भी तलाक प्राप्त करने के लिए छह से 18 महीने तक इंतजार करना पड़ता है। न्यायालय के नए फैसले के बाद तलाक के लिए प्रतीक्षा अवधि का महत्व नहीं रह जाएगा। यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है कि तलाक की स्थिति पैदा होने पर विवाह में किसी न किसी

पक्ष को बहुत पीड़ा या प्रताड़ना से गुजरना पड़ता है। वास्तव में कानून के तहत प्रतीक्षा अवधि की व्यवस्था तलाक के फैसले पर पुनर्विचार के लिए है, पर इस अवधि का इस्तेमाल अक्सर नकारात्मक ढंग से परेशान करने के लिए होता है। कई ऐसे मामले हैं, जहां तलाक के आकांक्षी पर एक-एक पल भारी पड़ता है। ऐसे में, सर्वोच्च न्यायालय का फैसला पीड़ितों के लिए बड़ी राहत है। जब जरूरी होने पर तत्काल तलाक की सुविधा हो जाएगी, तब बाकी रिश्तों पर भी सकारात्मक असर पड़ेगा।

इसमें शक नहीं कि भारत में तलाक लेने की प्रक्रिया को समझ-बूझकर जटिल बनाया गया है। प्रक्रिया ऐसी है कि लोग समझौता करके जीना पसंद करते हैं, तलाक लेना महंगा भी है और इसमें मानसिक रूप से लंबी पीड़ा से गुजरना पड़ता है। सर्वोच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अब साफ कर दिया है कि अदालत अनुच्छेद 142 के तहत ऐसे मामलों में भी विवाह को भंग कर सकती है, जहां एक पक्ष तलाक के लिए सहमत नहीं है। अदालत में यह मामला काफी पहले से ही चल रहा था। जून 2016 में दो न्यायाधीशों की पीठ ने पक्षकारों को परिवार अदालत में भेजे बिना तलाक देने के लिए अनुच्छेद 142 के तहत अदालत की शक्तियों के प्रयोग के संबंध में मामले को पांच न्यायाधीशों की बड़ी पीठ के पास भेज दिया था। अब न्यायमूर्ति संजय किशन कौल, संजीव खन्ना, ए एस ओका, विक्रम नाथ और जे के माहेश्वरी की पीठ ने साफ कर दिया है कि अनुच्छेद 142 के तहत अदालत की शक्तियां वैधानिक सीमाओं से मुक्त हैं। पीठ ने कहा कि सांविधानिक प्रावधान अदालत को पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय के लिए कोई भी आदेश जारी करने का अधिकार देता है। किसी परिस्थिति में तलाक देने के लिए अदालत अपने विवेक के प्रयोग से फैसला ले सकती है और यही उचित है। कई मामलों में अदालतों को यह पता होता है कि किसी पक्ष के साथ अन्याय हो रहा है, पर प्रतीक्षा अवधि देने की बाध्यता न्याय की राह रोक लेती है।

भारत में हिंदू धर्म में विवाह संस्कार का जो स्वरूप है, उसके अनुसार, तलाक की कोई मान्य व्यवस्था नहीं है, लेकिन संविधान के तहत तलाक की जो व्यवस्था है, उसमें सुधार की बहुत गुंजाइश है। अगर कोई जोड़ा साथ नहीं रहना चाहता है, तो इस स्थिति में तलाक के लिए ठोस या तय वजह जरूरी नहीं है। जोड़े के बीच तलाक के लिए सहमति को अदालत में पर्याप्त माना जा सकता है। बदलते दौर में यह जरूरी भी है। आखिर कोई तलाक के लिए व्यभिचार, परित्याग, धर्मांतरण और पागलपन जैसे कारणों का इंतजार क्यों करे? अनजाने में भी किसी जोड़े या किसी पक्ष के साथ क्रूरता न हो। ऐसे में, विवाह या विवाह विच्छेद से जुड़े कानूनों को उदार बनाना पड़ेगा।
